अधिक पाप से लिप्त होता जाता है। प्रकृति के नियमानुसार यह मानव शरीर विशेष रूप से स्वरूप-साक्षात्कार के लिए मिलता है। इसके तीन मार्ग हैं—'कर्मयोग', 'ज्ञानयोग' तथा 'भक्तियोग'। पाप-पुण्य से मुक्त हुए योगियों के लिए यज्ञादि-विधान का दृढ़ अनुसरण आवश्यक नहीं रहता। परन्तु जो इन्द्रियतृप्ति के परायण हैं, उनके लिए पूर्वोक्त यज्ञचक्र के साधन से आत्मशुद्धि करना अनिवार्य है। कर्म के अनेक अवान्तर भेद हैं। जो कृष्णभावनाभावित नहीं हैं , वे निश्चय ही विषय-परायण हैं। अतः उनके लिए पुण्यकर्मों का सम्पादन आवश्यक है। यज्ञ व्यवस्था इस प्रकार सुनियोजित है कि विषयी लोग इच्छा-पूर्ति करते हुए भी इन्द्रिय-तृप्तिजनित बन्धन में न पड़ें। विश्व की समृद्धि हमारे प्रयत्न पर नहीं, अपितु देवताओं द्वारा सम्पादित श्रीभगवान् की पूर्व व्यवस्था पर निर्भर है। इसीलिए वेदों में विभिन्न यज्ञों का भिन्न-भिन्न देवताओं के लिए विधान है। परोक्ष रूप से यह भी कृष्णभावनामृत का ही अभ्यास है क्योंकि यज्ञवित् यथासमय कृष्णभावनाभावित हो जायगा, यह निश्चित है। परन्तु यदि यज्ञों का अनुष्ठाता कृष्णभावनाभावित न हो पाये, तो यह सिद्धान्त नैतिक आचार मात्र रह जाता है। अतः अपनी प्रगति को नैतिक आचार तक ही सीमित न रखते हुए, उसका उल्लंघन करके कृष्णभावनामृत की प्राप्ति करनी चाहिए।

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः।
आत्मन्येव च संतुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते।।१७।।

यः=जो; **तु**=परन्तु; **आत्मरतिः**=आत्मा में ही आनन्द आस्वादन करता है; **एव**=निस्सन्देह; **स्यात्**=रहता है; **आत्मतृप्तः**=स्वयं प्रकाश; **च**=तथा; **मानवः**=मनुष्य; **आत्मनि**=अपने में; **एव**=ही; **च**=तथा; **सन्तुष्टः**=पूर्ण रूप से सन्तुष्ट; **तस्य**=उसके; **कार्यम्**=कर्तव्य; **न**=नहीं; **विद्यते**=है।

अनुवाद

परन्तु जो पुरुष आत्मा में ही आनन्द का अनुभव करता है, जो आत्मप्रकाश से युक्त है और जो आत्मा में ही पूर्ण संतुष्ट रहता है, उसके लिए कोई कर्तव्य नहीं है।।१७।।

तात्पर्य

जो पूर्णतया कृष्णभावनाभावित है और अपने कृष्णभावनाभावित कर्मों में ही पूर्ण सन्तोष का अनुभव करता है, उस पुरुष के लिए कुछ भी कर्तव्य शेष नही रहता। कृष्णभावना में तन्मयता के कारण उसके हृदयगत मल का तत्काल शोधन हो जाता है। ऐसी अन्तर्शुद्धी वस्तुतः हजारों यज्ञों का फल है। इस प्रकार मति का शोधन हो जाने पर श्रीभगवान् से अपने नित्य सम्बन्ध में पूर्ण आस्था का उदय हो जाता है। भगवत्कृपा से कर्तव्य स्वयं प्रकाशित हो जाता है, जिससे वेद-विधान के प्रति कोई कर्तव्य शेष नहीं रहता। ऐसे कृष्णभावनाभावित महज्जन की सांसारिक कर्मों मे लेशमात्र रुचि शेष नहीं रहती और न ही मदिरा, कामिनी आदि मोहांधताओं में उसे आनन्द की अनुभूति होती है।